शिक्षा क्षेत्र में विसंगतियाँ

(समालोचनात्मक अभिव्यक्तियाँ)

(विचारक)

प्रशान्त अग्रवाल
सहायक अध्यापक
प्राथमिक विद्यालय डहिया
विकास क्षेत्र : फतेहगंज पश्चिमी
जनपद बरेली

शिक्षा क्षेत्र में विसंगतियाँ (समालोचनात्मक)

'अनुक्रमणिका'

1. गाड़ी का दोष, ड्राइवर के मत्थे
2. विद्यालय कहाँ हैं?
3. परीक्षा-प्रणाली का क्रमिक पतन
4. विद्यालय की श्रेष्ठता के मानक बदलें
5. पहचान का आधार
6. बौद्धिक से अधिक महत्त्वपूर्ण नैतिक विकास
7. भावी पीढ़ी का निर्माण : एक चिन्तन
8. नैसर्गिक शिक्षा पद्धति : एक चिन्तन
9. अच्छे शिक्षक की कसौटी
10. सफलता का मतलब
11. आंकलन आसान नहीं
12. कर्म की गति गहन
13. गुरु तत्त्व
14. इंतज़ार जारी है...
15. (50000 रुपए वेतन देकर...)
16. MDM : नाम एक, काम अनेक
17. Quantity से अधिक ज़रूरी Quality
18. भाषा थोपकर विचारों और आत्मविश्वास की हत्या
19. पंख न बांधो मेरे : मातृभाषा मेरा 'स्व'
20. गलत सीख!
21. (यदि कोई व्यक्ति ऐसे प्रश्नों का...)
22. पदस्थों के नाम रटाना कितना सही?
23. आसन की गरिमा
24. अधीनस्थ की कुर्सी पर बैठना कितना सही?
25. एक गणित यह भी
26. नौकरी : करने के लिए या बचाने के लिए?
27. इच्छाएँ न्यूनतम, परहित अधिकतम
28. सम्मान! कैसा सम्मान!!
29. भगवान् की खुशी
30. नयी शिक्षा नीति : भाषा पर एक विचार
31. Kahoot challenge : एक विश्लेषण
32. 'सभ्य' समाज से मासूम सवाल
33. Rainbow रोमन में, तो kalrav देवनागरी में क्यों नहीं?

गाड़ी का दोष, ड्राइवर के मत्थे

अगर किसी गाड़ी का पहिया पंक्चर हो जाये तो उस पहिये की मरम्मत करनी चाहिए या उस गाड़ी के ड्राइवर को पंक्चरयुक्त गाड़ी चलाने की ट्रेनिंग देनी चाहिए। आज दूसरे विकल्प पर कार्य हो रहा है।

विद्यालय रूपी गाड़ी के पहिये व्यवस्थागत दोषों से पंक्चर हैं लेकिन इसका ज़िम्मेदार शिक्षक रूपी ड्राइवर को माना जा रहा है और उसे ट्रेनिंग पर ट्रेनिंग दी जा रही हैं कि ऐसे पढ़ाओ वैसे पढ़ाओ।

अरे, जिन निजी स्कूलों की जमकर तारीफ होती है, आज के अधिकांश सरकारी शिक्षक उन्हीं स्कूलों में खूब मेहनत से बेहतरीन result देकर यहाँ आये हैं। फिर आज यहाँ वो result क्यों नहीं दे पा रहे हैं? क्योंकि, गड़बड़ उनके शिक्षण कौशल में नहीं, system में है।

निजी स्कूलों में वेतन भले ही कम था लेकिन वहाँ शिक्षक को सिर्फ शिक्षक समझते थे, पर यहाँ का सिस्टम उस शिक्षक की शैक्षिक आत्मा को मारने पर उतारू रहता है।

Mdm, dress, स्वेटर, जूते, फल, दूध, गल्ला, राशन, गैस, निर्माण, मरम्मत, पुताई, tablet, पौधारोपण, रसोइया, सफाईकर्मी, प्रधान, कोटेदार, ग्राम पंचायत सचिव, पत्रकार, बैंक, smc, blo, चुनाव, पोलियो, बोर्ड ड्यूटी, सर्वे, निरीक्षण, audit, अपर्याप्त शिक्षक, कक्षा-प्रवेश-प्रोन्नति के अव्यावहारिक नियम, अभिभावकों की उदासीनता या आर्थिक मजबूरी, सूचनाओं के अंतहीन सिलसिले....

इस अनगिनत द्वार वाले चक्रव्यूह में घिरे आज के अभिमन्युओं की मनःस्थिति समझने की कोशिश कीजिये।

हाँ, मानता हूँ कि शिक्षकों में भी कुछ पथभ्रष्ट हैं लेकिन उन चंद लोगों की आड़ में इस सत्य-तथ्य को नकारिये मत कि "बेसिक शिक्षा की बदहाली के मूल में शैक्षणिक कौशल का अभाव नहीं, बल्कि व्यवस्थागत दोष हैं।"

हमें पढ़ाना मत सिखाइये,

हम पढ़ा पायें, ऐसा माहौल बनाइये।

(पीड़ा-विश्लेषक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उत्तर प्रदेश)

विद्यालय कहाँ हैं?

बड़े अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि हमारे यहाँ विद्यालय लगभग ख़त्म हो चुके हैं।

चौंकिए मत, विद्यालय उसी को कह सकते हैं जहाँ विद्या मिले। और विद्या उसी को कह सकते हैं जिससे चरित्र की उपलब्धि हो। अब भी क्या हम कह सकते हैं कि हमारे विद्यालय 'विद्यालय' हैं?

कटु सच्चाई यह है कि हमारे विद्यालय 'सूचनालय' बन चुके हैं, जहाँ आर्थिक सम्पन्नता का बेस (कैरिअर) तैयार करना ही पहला और आखिरी उद्देश्य रहता है; छात्र का भी, अभिभावक का भी और शिक्षा संस्थान का भी।

एक और बेहद खतरनाक सत्य यह भी है कि इस कैरिअर निर्माण की खातिर चरित्र का निर्माण तो दूर, उल्टे उसको रौंदने से भी आज गुरेज़ नहीं किया जाता। छुपकर नहीं, खुलकर नक़ल; इक्का-दुक्का नहीं, सामूहिक नक़ल; छात्रों द्वारा नहीं, ठेकों पर सेंटर द्वारा आयोजित नक़ल; ईमानदार निरीक्षकों का उत्पीड़न; ये सारी सच्चाइयाँ किससे छुपी हैं?

येन-केन प्रकारेण अच्छे नंबर, अच्छा ग्रेड, तिकड़मी दिमाग; यही है तथाकथित विद्यालयों की उत्पादकता। और जहाँ वास्तविक प्रतिभा है भी, उसमें भी (अपवाद छोड़कर) मानवीय मूल्यों की बजाय 'भौतिकवादी सोच की प्रधानता', देने से ज्यादा लेने की जुगाड़, कर्तव्य से अधिक अधिकारों का शोर, व्यवहारिकता और होशियारी के नाम पर भ्रष्ट आचरण।

ये सब हमारे तथाकथित विद्यालयों से ही निकलते हैं न?

देश की सभी समस्याओं की जड़ में इसी चरित्र का अभाव है न?

अब फिर वही प्रश्न :-

- 'विद्या के मंदिर' कहाँ हैं?
- इन मंदिरों के देवता (चरित्र) कहाँ निर्वासित हैं?
- इन मंदिरों के पुजारी (अध्यापक) खुद कितने चरित्रवान हैं?
- इन मंदिरों के भक्त (विद्यार्थी) भ्रमित होकर किन नकली देवताओं को पूजने लगे हैं?

हम चर्चाएँ करते हैं कि पत्तों की धूल कैसे साफ़ हो? लेकिन चर्चा का मुख्य बिंदु होना चाहिए कि चरित्र रूपी जड़ कैसे मजबूत हो। शायद ही कोई असहमत हो कि किसी भी देश का गौरव, स्वर्णिम भविष्य और खुशहाली उसके नागरिकों की बुद्धिमत्ता से नहीं, उच्च चरित्र से तय होता है।

सुनने में भले ही अजीब लगे लेकिन एक कटु सच्चाई यह भी है कि आज निरक्षरता से भी बड़ी समस्या है 'चरित्रहीन विद्वता'। और इसका स्पष्ट प्रमाण है भ्रष्टाचार में आकंठ डूबी लगभग हर मशीनरी, जिसमें सब उच्च-शिक्षित लोग ही बैठे हैं।

विद्यालय किसी भी देश का वर्तमान तय नहीं करते, लेकिन उसके भविष्य की नींव तैयार करते हैं। और वर्तमान पर ही फोकस करने वाले लोग इस बेहद महत्त्वपूर्ण विषय की अनदेखी कर अपनी अदूरदर्शिता का परिचय दे रहे हैं और देश के अंधकारमय भविष्य की पटकथा लिख रहे हैं।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्राथमिक विद्यालय डहिया, बरेली, उ.प्र.)

परीक्षा प्रणाली का क्रमिक पतन

(आदर्श स्थिति)

परीक्षा कब हो गयी, विद्यार्थी को पता ही नहीं चलता था क्योंकि गुरुकुल प्रणाली में गुरु की गहन दृष्टि से विद्यार्थी का सतत मूल्यांकन होता रहता था।

(बाद में)

लिखित परीक्षा शुरू हुई क्योंकि गुरुकुल प्रणाली समाप्त होने से गुरु और विद्यार्थी के पारस्परिक सम्बन्ध शिथिल हो गये, लेकिन लिखित परीक्षा में विद्यार्थी ईमानदारी से लिखते थे क्योंकि संस्कार अभी भी थे।

(पतन शुरू)

जब विद्या की अपेक्षा अंक और चरित्र की अपेक्षा नौकरी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी तो परीक्षार्थी छुपकर नक़ल करने लगे।

(पतन बढ़ा)

अब शिक्षा की दुकानों के प्रबंधक अपनी दुकान चमकाने के लिए खुद नकल कराने लगे।

(पतन और बढ़ने पर)

अब अन्य विद्यार्थियों में भी डंके की चोट पर नक़ल करने का दुस्साहस आ गया। ईमानदार कक्ष निरीक्षक प्रताड़ित होने लगे।

(पतन की पराकाष्ठा)

विद्यार्थी और परीक्षक दोनों को चरित्रहीन मानते हुए 'flying squad' 'cctv camera' आदि का प्रयोग करना पड़ रहा है। फिर भी बेतहाशा नक़ल और हर step पर जालसाजियों की ख़बरें आम।

निष्कर्ष :

विद्यार्थी बढ़े, शिक्षा बढ़ी, जागरूकता बढ़ी, विज्ञान और तकनीक बढ़े पर चरित्र नष्ट हो गया। और राष्ट्र के असली गौरव और सच्ची उन्नति का आधार उसके नागरिकों का चरित्र होता है। क्या इस सच्चाई को अस्वीकार किया जा सकता है!!!

अतः राष्ट्रोत्थान की दृष्टि से विद्यार्थियों में संस्कारों का बीजारोपण हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। (विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उ.प्र.)

विद्यालय की श्रेष्ठता के मानक बदलें

हम सब अक्सर अच्छा विद्यार्थी/विद्यालय उसे मानते हैं जहाँ बच्चों ने

* किताब पढ़ना सीख लिया
* मोहक गीत सुना दिया
* पाठ्यचर्या के अनुसार प्रश्नोत्तर सुना दिए
* विज्ञान का प्रयोगात्मक कार्य किया
* सुन्दर कलाकृति का निर्माण किया
* खेलकूद में प्रतिभा का परिचय दिया
* किसी नवाचार द्वारा कोई ज्ञान जल्दी प्राप्त किया
* कोई पुरस्कार प्राप्त किया
* अंग्रेजी बोलकर दिखा दी

या

* विद्यालय का परिवेश आकर्षक है
* विद्यालय सुविधा-संपन्न है
* किसी उच्चाधिकारी ने विद्यालय की प्रशंसा की
* किसी मंच पर बच्चों, शिक्षकों, विद्यालय का नाम रोशन हुआ
* कोई पर्व-जयंती धूमधाम से मनायी गयी

निस्संदेह उक्त सभी कार्य महत्त्वपूर्ण हैं और होने भी चाहिए, खूब होने चाहिए लेकिन कुछ missing है क्योंकि उक्त सभी कार्य तो एक hi-fi कॉन्वेंट स्कूल में भी होते ही रहते हैं पर फिर भी कान्वेंट से पढ़े-लिखे लोगों का hi-fi समाज देश के आदर्श नागरिक गढ़ नहीं पा रहा है। उलटे, भ्रष्टाचार के घुन से देश को खोखला करने वालों में उच्च शिक्षितों की ही प्रधान भूमिका है।

तो फिर विद्यालयों में कौन सी चीज़ missing है? वो है चरित्र। बात असल में यह है कि आधुनिक शिक्षा में नैतिक संस्कारों का स्थान अत्यंत गौड़ और उपेक्षित है। बौद्धिक कौशल के पंख को तो खूब मजबूत बनाया जा रहा है लेकिन नैतिक संस्कारों के दूसरे पंख की उपेक्षा से राष्ट्रोत्थान-रूपी पक्षी सही तरह से उड़ नहीं पा रहा है। इसलिए हमारे देश को उक्त लीक पर चलने वाले स्कूल नहीं, बल्कि चरित्र के ऊँचे आदर्शों से अनुप्राणित विद्यालयों की दरकार है, जिनकी श्रेष्ठता संसाधनों, मेधा, अंग्रेजी में प्रवीणता, पुरस्कारों आदि से नहीं बल्कि नैतिक संस्कारों से आँकी जाये।

अतः हम उन बातों पर भी भरपूर फोकस करें जब किसी बच्चे ने

* दूसरे बच्चे की किसी अच्छी बात की तारीफ की हो
* अपनी कोई गलती या अपराध सबके सामने स्वीकार किया हो
* अपनी या किसी अन्य की ईमानदारी, सच्चाई, परोपकार की घटना सुनायी हो
* किसी मामले में विशेष धैर्य या सहनशीलता का परिचय दिया हो
* बड़ों के आदर से सम्बंधित विशेष आचरण किया हो
* अपने किसी छोटे से कार्य द्वारा अपनी उदार सोच, विशाल हृदय, को दर्शाया हो।
* समाज को बेहतर बनाने के लिए कुछ सोचा या किया हो।
* .....

(इसके अतिरिक्त ये भी हो)

- विद्यालय के पुस्तकालय में पाठ्यक्रम के अतिरिक्त नैतिक शिक्षापरक पुस्तकों का समावेश और उनको प्रोत्साहन हो।
- प्रार्थना-सभा में ऐसी बातों, घटनाओं का समावेश हो।
- विद्यालय में नैतिकता को प्रोत्साहित करने वाली प्रतियोगिताओं (जैसे भाषण, निबन्ध, वाद-विवाद) का आयोजन किया जाये।
- महापुरुषों के नैतिक पक्षों की विशेष जानकारी दी जाये
- पाठ्यक्रम में कोरी तथ्यात्मकता की बजाय नैतिकता में रची-बसी-पगी पाठ्यसामग्री को प्रमुखता दी जाये।
- * .....

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

पहचान का आधार

(संभव है कुछ लोग असहमत हों)

मेरे विद्यालय का नाम, उसकी श्रेष्ठता की पहचान उसकी टिप-टॉप से क्यों आंकी जाए?

जब तक मेरे विद्यालय में ये सुन्दरता न आ जाए, मैं उसे पिछड़ा क्यों मानूं?

पानी की शीतलता क्या मिट्टी के घड़े में नहीं होती?

मैं बच्चों से क्यों न यह कहूं :

* boundary-wall नहीं, कोई बात नहीं
* फर्श टूटा-फूटा है, कोई बात नहीं
* किताबें देर से मिलेंगी, कोई बात नहीं
* पढ़ने में कई बाधाएं आती हैं, कोई बात नहीं

क्योंकि, प्यारे बच्चों,

मैं हूँ न,

तुम हो न,

और सबसे ख़ास बात,

हमारी लगन है न;

बस,

मंजिल पाने के लिए, एकमात्र यही संसाधन बहुत है।

गौरव तो उसी कमल का है, जो कीचड़ में खिले;

तभी तो औरों को हौंसले की बेहतर मिसाल पेश कर पाएंगे।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली)

बौद्धिक से अधिक महत्त्वपूर्ण नैतिक विकास

बहुत पहले एक स्कूल में बड़े बच्चों के बीच एक debate कराई गयी 'A humble illiterate is better than arrogant genius.' और स्वाभाविक ही, लगभग 90 प्रतिशत विद्यार्थी 'घमंडी विद्वान' की बजाय 'विनम्र अनपढ़' के पक्ष में खड़े हो गये।

कहने का अर्थ यही है कि हर कोई मानेगा कि 'संस्कारविहीन शिक्षा' अशिक्षा से भी अधिक घातक है। आज अपराध और भ्रष्टाचार के जितने भी मामले हैं उनमें अशिक्षा से भी अधिक योगदान है 'संस्कारहीनता' का।

किन्तु विडंबना यह, कि हमारी सम्पूर्ण शिक्षा-(अ)व्यवस्था और सफलता के सामजिक मापदंडों में इन संस्कारों का स्थान अत्यंत गौण है। कितनी विद्यालयी या प्रतियोगी परीक्षाओं में इन संस्कारों को मापने या carrier-opportunity में weightage देने की प्रभावी व्यवस्था है?

अपने बेसिक की ही बात करें तो हमें इस vision के साथ पढ़ाना होगा कि हम बच्चों के बौद्धिक विकास से भी अधिक वरीयता उनके नैतिक विकास को दें। और तब हमारे विद्यार्थी तिजोरियों के हीरे-मोती भले न बनें, ठंडी छाँव देने वाले बहुपयोगी वृक्ष अवश्य बनेंगे। वे देश की liability (बोझ) नहीं, asset बनेंगे।

हमारे ग्रामीण विद्यालयों में नैतिकता के कुछ मापदण्ड, जिन पर हमें अपनी क्षमता-भर पूरा ध्यान देना है, इनके बीज बच्चों में जमा देना है :-

1. बच्चों की भाषा में किसी गाली का स्थान न हो।
2. बच्चे बड़ों को अभिवादन करते हों।
3. बड़ों का नाम न लेकर 'यथोचित रिश्ते वाला' संबोधन करते हों।
4. किसी के दु:ख की बात को मजा लेकर न सुनते हों, न कहते हों।
5. किसी दुखी/रोते बच्चे को खुश करने की कोशिश करते हों।
6. झूठ न बोलते हों, बोलने पर ग्लानि का अनुभव करते हों।
7. पेंसिल, रबर आदि देकर साथी की मदद करने को स्वत: तत्पर हो जाते हों।
8. चीजे चुराने को तो गलती नहीं, बहुत बड़ा पाप समझते हों।
9. समय की कीमत समझते हों।
10. प्रत्येक पेशे की सामजिक आवश्यकता को अनुभव करके उस पेशे का (श्रम का) सम्मान करते हों, चाहे सफाई-कर्मी ही हो।
11. निंदा-आलोचना से परहेज करते हों।
12. ईश्वर के/ प्रकृति के न्याय में विश्वास रखें।
13.....
14.....

यकीन मानिये, यही बीज वृक्ष बनेंगे। इस प्रकार शिक्षित बच्चे बड़े होकर हमें भले ही भूल जायें (क्योंकि हमें तो आखिर नींव का पत्थर ही बनना है न) लेकिन यही बच्चे सही मायनों में देश की धरोहर और सच्चे इंसान बनेंगे।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्राथमिक विद्यालय डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

भावी पीढ़ी का निर्माण : एक चिंतन

एक बोध कथा पढ़ी थी जिसमें एक तितली के अंडे के छोटे से छेद में से एक बच्चा निकलने का जीतोड़ प्रयास कर रहा है और एक आदमी दयालुतावश पिन से उस छेद को बड़ा कर देता है। बच्चा आराम से निकल तो आता है किंतु कभी उड़ नहीं पाता क्योंकि संघर्ष के अभाव में उसके पंख विकसित नहीं हो सके।

यह कहानी इन दिनों याद इसलिए आयी क्योंकि आज के बच्चों को जिन सुख-सुविधाओं के साथ पाला जा रहा है (और अनेक बार तो जागरुक parenting के तर्क के साथ) कि संदेह होता है कि कहीं इन बच्चों के पंख भी अविकसित तो नहीं रह जाएंगे?

पैसे की दिक्कत नहीं है तो आज का बच्चा

* AC में रहता है।
* कार/बाइक से स्कूल जाता है।
* धूप में छाता तानता है।
* RO का पानी पीता है।
* Facial cream, deodorant आदि का प्रयोग करता है।
* Fast-food के साथ diet-chart भी follow करता है।
* Gym, yoga (योग नहीं) 'join' करता है।
* अधिकांश कामों के लिए मशीनों पर निर्भर है।
* मौलिक चिंतन की बजाय Technology के use से 'used to' होते हुए अपने project पूरे करता है।
* Internet पर search 'मारने' वाला techno-savvy बंदा है।

दूसरी तरफ तितली के अंडे से अपने दम पर निकलने की कोशिश करने वाले ये लोग हैं :-

* जेठ की दुपहरी में रिक्शा खींचने वाले गरीब,
* खेतों में नंगे पैरों मिट्टी-धूप से पकते किसान,
* खुले आसमान के नीचे बेखटके विचरते,
  नहरों के 'गंदे पानी' में जमकर नहाते और
  गिरने से बेखौफ पेड़ों पर चढ़ते बच्चे,
* मीलों पैदल चलने को 'बस थोड़ी ही दूर तो है' कहने वाले जिगर,
* रात की 'बासी रोटी' खाकर भी स्वस्थ रहने वाली पीढ़ियाँ,
* मशीनों की बजाय 'अपना हाथ जगन्नाथ' मानने वाली 'पिछड़ी सोच'

as an average

* क्या हम इन 'कथित' पिछड़ों से अधिक स्वस्थ हैं?
* क्या हमारे शरीर इनसे अधिक बेहतर हैं?
* क्या हमारे नैतिक मूल्य इनसे अधिक उन्नत हैं?
* क्या हमारे हृदय इनसे अधिक उदार हैं?

और सबसे बड़ा प्रश्न

* क्या हमारा जीवन इन 'पिछड़ों' से अधिक सुकूनमय है?

मानता हूँ कि बदलते समय के अनुसार अनेक परिवर्तन अपनाने होंगे लेकिन भावी पीढ़ी को सुविधाओं और अपनी extra-cautious approach का इतना आदी भी न बनाएँ कि उनके अंदर संघर्ष से उत्पन्न प्रतिरोधक-शक्ति का निर्माण ही ठप हो जाये। मुख्य प्रयास उन्हें बचाने का नहीं, उनकी जीवनी-शक्ति बढ़ाने का हो।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उत्तर प्रदेश)

नैसर्गिक शिक्षा पद्धति : एक चिंतन

हमारी प्राचीन महान शैक्षिक प्रणाली इस हद तक श्रवण-आधारित रही है कि विश्व की प्राचीनतम ज्ञान धरोहर वेदों का नाम ही 'श्रुति' पड़ गया क्योंकि श्रुतियों का ज्ञान लिखकर नहीं वरं सुनकर ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हृदयांतरित होता रहा। आधुनिक काल में भी 'सुबोपलि' (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) की अवधारणा के अनुसार लिखना सबसे अंतिम क्रिया है।

किन्तु विडम्बना यह कि बच्चों को डटकर पढ़ाने के बाद भी बच्चे आकर कहते हैं, "सर जी, 'काम' दे दो।" असल में यह मान्यता (कि काम तो लिखा हुआ ही होता है) उन मासूमों की नहीं है, बल्कि उन अभिभावकों, अध्यापकों और हमारी उस सतही शैक्षिक व्यवस्था द्वारा सुदृढ़ की गयी है जो काफी हद तक बच्चे को उसके मानसिक और चारित्रिक स्तर से नहीं, उसके लिखित कार्य से आँकने के आदी हो चुके हैं।

माना जाता है कि लिखित ज्ञान को बार-बार दोहराकर पुष्ट किया जा सकता है। किन्तु सच्चाई इसके विपरीत है। लिखित कार्य पर निर्भर बच्चे सुनने में स्वाभाविक ही उतनी एकाग्र-चित्तता नहीं रखेंगे। और ज्ञान लिखित करके उनकी स्मरण-शक्ति पर संदेह करके उसे पूर्ण संघर्ष द्वारा विकसित होने का अवसर नहीं दिया गया।

लेखन कौशल का अपना महत्त्व है किन्तु कापियों, पुस्तकों से लदे-दबे बच्चे की कीमत पर नहीं, स्मरण-शक्ति, एकाग्रचित्त होकर सुनने को दाँव पर लगाकर नहीं। बच्चा अपनी एक मौलिक अल्हड़ता के साथ आगे बढ़ना चाहता है, और हम उसे स्वनिर्धारित, स्वघोषित श्रेष्ठ सांचों में ढालकर बोनसाई बनाना चाहते हैं।

आज ज़रुरत है शिक्षा के अधिकाधिक सरलीकरण की, जिसमें न तो कापियों, किताबों से भरे बस्तों का बोझ हो, और न ही तोतारटंत और बाध्यकारी नियमों से बंधी शिक्षा पद्धतियों की ऊब।

शिक्षा पद्धति ऐसी हो, जिसमें हो

सुरुचि का प्रवाह।

बचपन का उत्साह।

ज्ञान को प्रकाशित किया जाये

कहानी द्वारा मन में बसाकर

खेल-खेल में बात बताकर

चलते-फिरते, सुनकर सुनाकर

कुछ हँसकर, कुछ गाकर

आचरण द्वारा चरित्र बनाकर

ज्ञान दीप को हृदय में जलाकर

तभी हम पायेंगे भावी भारत के सच्चे कर्णधार

जिनके पास होगा मौलिकता और चरित्र का सुदृढ़ आधार।

हो सकता है कि व्यावहारिकता की दृष्टि से बातें कुछ अजीब सी प्रतीत हों किन्तु हम कर पायें या न कर पायें, सैद्धांतिक आदर्श और सोच को सामने अवश्य रखना चाहिए; क्या पता, कभी ऐसी परिस्थितियों का वातावरण बन ही जाये।।

(विचारक : प्रशांत अग्रवाल, बरेली, उत्तर प्रदेश)

अच्छे शिक्षक की कसौटी

- विद्यार्थी में जानकारियां ठूंसकर
- नंबर की रेस में दौड़ाकर-जिताकर
- गाने-कविता रटाकर-गवाकर
- उन्नति की सामाजिक परिभाषा के सांचों में उसे ढालकर-तोलकर
- कार्यक्रमों में 'दिखाने के दांतों' पर उल्लसित होकर

क्या हम 'अच्छे शिक्षक' हो सकते हैं?

'अच्छा शिक्षक' है वह, जिसके विद्यार्थी बन जाते हैं

- ✓ संवेदनशील
- ✓ धैर्यवान
- ✓ मुश्किल वक़्त में हौंसला रखने वाले
- ✓ मृदुभाषी/सत्यभाषी
- ✓ न्यायप्रिय
- ✓ अनुशासनप्रेमी
- ✓ प्रकृति-प्रेमी
- ✓ शांतचित्त
- ✓ परदुख-दुखी, परसुख-सुखी

क्या हमारे अधिकाँश क्रियाकलाप वास्तव में हमारी अपनी सोच पर आधारित हैं?

या फिर

समाज के कृत्रिम प्रतिमानों से प्रभावित होकर उसी समाज से मान्यता प्राप्ति के लिए हम उन्हें अपना विचार मान बैठे हैं?

पता नहीं क्यों? पर लगता है कि वर्तमान शिक्षा के कलेवर में 'आत्मा' नदारद है।

विचार थोड़ा कटु और तीखा है पर हृदय से निकला है।

आशा है सुधी साथी इसकी गहराई में जाकर प्रकट-अप्रकट बिन्दुओं पर निज-मंथन करेंगे।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उत्तर प्रदेश)

सफलता का मतलब

- क्या सफल वही है जो बाकियों को पीछे छोड़ दे?
- क्या नायक वही है जो limelight में चमक रहा हो क्योंकि बाकी लोग अंधेरे में खामोश बैठे हैं?
- क्या उक्त कसौटियों पर कसा जाने वाला समाज 'चंद सफल' और 'अधिकांश असफल' लोगों से भरा एक कुंठित समाज नहीं होगा?
- हम जिन बच्चों को शिक्षा देते हैं, उनमें से अधिकांश आगे चलकर गाँव में ही रहेंगे, खेती-मजदूरी और अन्य 'तथाकथित पिछड़े' काम ही करेंगे।
- तो क्या कामयाबी की वर्तमान परिभाषा के अनुसार वे अधिकांश लोग असफल कहलाने को अभिशप्त हैं?
- क्या हमें उनके अंदर ऐसी सोच नहीं भरनी चाहिए जब वे एक 'आम' आदमी बने रहने के बावजूद मानवता की दृष्टि से स्वयं को खास महसूस करें?
- क्या सफलता की ऐसी परिभाषा नहीं हो सकती जिसमें समाज का हर व्यक्ति सफल हो सके? सभी लोगों की अपनी स्वतंत्र victory line हो जो दूसरों की स्थिति से निर्धारित न हो।

यह संभव है, यदि हम सफलता के मानकों पर पुनर्विचार करें।

क्यों न हम उसे सफल मानें,

- जिसने जीवन में अधिकतम कर्तव्य-निर्वहन और न्यूनतम इच्छाओं के द्वारा 'संतोष' नामक महाधन को पा लिया हो।
- जिसके पास बैठने से, जिसकी वाणी से किसी दुखी व्यक्ति को सुकून भरी ठंडक महसूस होती हो।
- शांति, प्रेम, सत्य, करुणा जिसके व्यक्तित्व के अंग हों।
- जो प्राकृतिक संसाधनों का कम से कम दोहन करके उनके संरक्षण का प्रयास करता हो।
- जो देश की उन्नति में अपने हिस्से लायक हाथ बँटाता हो।
- ....

भले ही ऐसा व्यक्ति एक सार्थक जीवन जीने के बाद गुमनाम मौत मर जाये लेकिन मेरी नज़र में ऐसी गुमनामी अनेक 'नामचीनों' की शोहरत से कहीं अधिक 'सफल' है ठीक उसी प्रकार जैसे एक बीज का अस्तित्व मिटने के बावजूद उसकी सार्थकता अनंत बन जाने में निहित है।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, "बढ़ती आयु के साथ मैं पाता हूँ कि मेरी दृष्टि छोटी घटनाओं में महानता की खोज करती है। किसी बड़े पद पर तो कोई भी व्यक्ति बड़ा हो जाएगा। प्रशंसा के आलोक में एक कायर भी वीर हो उठेगा क्योंकि उस समय सब लोगों की दृष्टि उस पर होती है। मेरी दृष्टि में सच्ची महानता वहाँ है जहाँ एक सामान्य कीट चुपचाप, सतत, क्षण-क्षण, घड़ी-घड़ी अपना कर्तव्य करे जा रहा है।"

और उक्त के परिप्रेक्ष्य में लगता है कि वास्तव में सफलता और सार्थकता की दुनियावी परिभाषाएँ कितनी सतही हैं।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

आंकलन आसान नहीं

(मन में उमड़ी विचार तरंग)

किसी शिक्षक के योगदान का तुलनात्मक आँकलन क्या आसान है ?

कल्पना करें दो निष्ठावान शिक्षक हैं :

1. **एक का विद्यालय शुरू में बदहाल था। उसके आने के बाद चीज़ें पटरी पर आयीं। विद्यालय परिणाम सभी मामलों में 90%**

   स्थितियां : शिक्षक मेहनती, गाँव के शांत-मिजाज लोग, सहयोगी स्टाफ, बेहतर प्रधान, शिक्षक के निजी जीवन की अनुकूलाताएं आदि आदि

2. **दूसरे का विद्यालय भी बदहाल था। उसके आने के बाद सुधार हुआ लेकिन विद्यालय अभी भी 50% पर है।**

   स्थितियां : शिक्षक मेहनती, गाँव का प्रतिकूल वातावरण, शेष स्टाफ की उदासीनता, निजी जीवन की प्रतिकूलताएं आदि आदि

आप किस शिक्षक को श्रेष्ठ मानेंगे?

दावे के साथ सही उत्तर देना बहुत कठिन बल्कि असंभव है। कर्म की गति बड़ी गहन है, जीवन की परिस्थितियां, हमारी सीमितताएँ, कमजोरियां, निर्णय करने वाले के पूर्वाग्रह आदि अनेक समीकरण हैं जिनमें सिर्फ ईश्वर ही सही निर्णय दे सकता है।

ऐसे में श्रेष्ठ शिक्षक, विद्यालय की पहचान सिर्फ नतीजों से आंकने का अर्थ है सिर्फ मंजिल को सलाम (जिसे सभी करते हैं) जबकि असली सम्मान वहाँ है जहाँ आपके रास्ते के जूनून को सलामी दी जाये।

और गहराई में जायें तो असली सलामी दुनिया से नहीं, अपने ज़मीर से ईश्वरीय कृपा के रूप में मिलती है क्योंकि एक सूत्र यह भी है कि "जिस चीज़ के मिलने से हम खुश हों, हम उससे छोटे हैं" और असली खुद्दार सिर्फ ईश्वर और उनसे मिले पुरस्कार पर ही खुश होगा।

स्वामी विवेकानन्द ने एक बड़ी गहरी बात कही है, "बढ़ती आयु के साथ मैं यह पाता हूँ कि मेरी दृष्टि छोटी घटनाओं में महानता की खोज करती है। किसी बड़े पद पर तो कोई भी व्यक्ति बड़ा हो जायेगा। प्रशंसा के आलोक में एक कायर भी वीर हो उठेगा क्योंकि उस समय सभी लोगों की दृष्टि उस पर होती है। मेरी दृष्टि में सच्ची महानता वहाँ है, जहाँ एक सामान्य कीट चुपचाप, सतत, क्षण-क्षण, घड़ी-घड़ी अपना कर्तव्य करे जा रहा है।"

अब पुनः वही बात, इस संसार में किसी के कार्य को जज कर पाना क्या आसान है?

व्यक्ति का ध्यान सिर्फ कर्तव्य निभाने पर होना चाहिए, इस बात से बेपरवाह होकर कि कोई मेरे कार्य को किस प्रकार तोल रहा है। संसार से मिला सम्मान तो 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' के कारण कृत्रिम होता है। असली सम्मान तो अन्दर से उत्पन्न होता है जिसे आत्मसम्मान कहा जाता है और जिसके प्रबल होने पर किसी से मिला अपमान हमें अपमान-बोध नहीं करा सकता और किसी से मिला सम्मान हमें फूल के कुप्पा नहीं बना सकता।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

कर्म की गति गहन

- मिली हुई अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ,
- किया हुआ काम,
- उस पर मिला नाम या बदनामी,
- देश-काल के अनुसार लोगों की सोच-अवधारणाएं,
- सापेक्षता का सिद्धांत;

इस संसार में कर्म की गति बड़ी गहन है।

अतः

- किसी के विषय में एकदम से निष्कर्ष पर न पहुँचें।
- किसी के आँकलन में नीयत-निष्ठा को प्राथमिकता दें। ऐसों का उत्साहवर्धन करें।
- जहाँ तक संभव हो, आलोचना से बचें।

और सबसे बड़ी बात,

- संसार के लोगों की नज़र से भी अधिक मायने रखती है, 'उस'की नज़र।

किसी ने क्या खूब कहा है,

"कुदरत को नापसंद है, सख्ती बयान में।
इसीलिए तो दी नहीं, हड्डी ज़बान में।।"

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उ.प्र.)

गुरु तत्त्व

गुरु तत्त्व इतना गहन है कि परम तत्त्व परमेश्वर से भी अधिक महिमा गुरु की मानी गयी है (गुरु गोविन्द दोऊ खड़े.....)।

मेरी दृष्टि में गुरु शब्द व्यक्तिवाचक से भी अधिक तत्त्ववाचक है जिसमे वह क्षमता है कि शिष्य के समस्त भार को वहन करके उसे बिलकुल हल्का और मुक्त कर दे।

सांसारिक दृष्टि से देखें तो हमारी संस्कृति में गुरु की पदवी परमपावन मानी गयी है। गुरु के प्रति श्रद्धा का उद्रेक उचित-अनुचित के विवेक-विचार से भी परे चला जाता है। एकलव्य का गुरु द्रोणाचार्य के आह्वान पर निस्संकोच होकर अंगूठा काटकर देना, आरुणि का गुरु आज्ञा पालन के निमित्त जीवन को दांव पर लगा देना, कुमारिल भट्ट का गुरुद्रोह के प्रायश्चित्तस्वरुप तुषाग्नि में जलकर प्राण-त्याग; हमारी परंपरा ऐसे दृष्टान्तों से भरी पड़ी है।

किन्तु जहाँ श्रद्धा का उद्रेक हो वहाँ श्रद्धास्पद (यहाँ गुरु) का दायित्व भी अत्यधिक हो जाता है। शिष्य के प्रत्येक कर्म का उसे भागीदार भी बनना होगा, जीवन के अंतिम क्षण ही नहीं, बल्कि शिष्य के मुक्त होने तक उसे अपना गुरुधर्म निभाना होगा।

अब आते हैं वर्तमान परिदृश्य में, जहाँ गुरु और शिष्य का नाता दयनीय स्थिति में है। गुरु अब मात्र शिक्षक है जिसका मुख्य कार्य सरकारी दिशानिर्देशों के अनुसार शिष्य को समाज के पूर्वनिर्धारित सांचे में फिट होंने के योग्य बनाना मात्र है और शिष्य वह छात्र है जो ग्राहक की भांति उक्त ज्ञान को पाता है। कुछ वर्षों में गुरु और शिष्य एक दूसरे के लिए अजनबी बन जाते हैं।

प्रश्न है कि क्या हमारी महान गुरु शिष्य परंपरा के वर्तमान में पुनुरुज्जीवित होने की कोई संभावना बनती है?

एक संभावना है, जैसा कि कहा गया है, गुरु शब्द व्यक्तिवाचक से अधिक तत्त्ववाचक है, ऐसे में यदि शिक्षक अपने अन्दर गुरु-तत्त्वों को विकसित करने की साधना करे तो आवश्यकतानुसार पात्र शिष्यों के सहज कल्याण में प्रवृत्त हो सकता है, उसका-अपना इहलोक-परलोक साध सकता है।

अंतिम बात, उक्त समस्त विचार-विवेचन जीवन के चरम लक्ष्य को ध्यान में रखकर किया गया है क्योंकि परम लक्ष्य का शोध ही हर व्यक्ति का कर्तव्य है।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

इंतज़ार जारी है.....

शानदार ध्वजारोहण, आकर्षक सजावट,
अच्छा भाषण, सुन्दर कार्यक्रम,
देशभक्ति के गीत और गूँजते नारे;
सब कुछ अच्छा है, फिर भी कुछ खल रहा है...

क्या वास्तव में राष्ट्रप्रेम इतना व्यापक है?
या राष्ट्रप्रेम सिर्फ इन्हीं 'प्रतीकों' तक सीमित है?
क्या आज के दिन फड़कती भुजाएं शेष दिन भी फड़कती हैं?

प्रेम का आधार, प्रेम की कसौटी होता है 'त्याग',
प्रेमास्पद के लिए अपने 'स्वार्थ' का त्याग,
क्या वास्तव में इस राष्ट्रीय चरित्र का विकास हुआ है?

भ्रष्टाचार से हम 'adjust' करते हैं,
धार्मिक उन्माद को हम 'बरदाश्त' करते हैं,
अधिकारों के नक्कारखाने में कर्तव्य-निर्वहन तूती की आवाज़-मात्र है।

किसी भी राष्ट्र की सबसे खास पूँजी होती है 'राष्ट्रीय चरित्र',
खेद है, आज यह चरित्र हर जगह सिरे से गायब है,
क्यों?.. क्योंकि हमने 'त्याग' की महत्ता को घुट्टी में पिलाना बंद कर दिया है,
हमारी शिक्षा 'त्याग के संस्कार' की बजाय 'कॅरियर से प्यार' पर केन्द्रित है।
और जहाँ कहीं यह चरित्र बचा भी है,
उसे हमने हाशिये पर डालकर औरों को भी परोक्षतः हतोत्साहित ही किया है।

कहते हैं, 15 अगस्त की आज़ादी अधूरी थी,
जो 26 जनवरी को संविधान लागू होने पर पूरी हो गयी,
लेकिन हृदय कह रहा है, इंतज़ार खत्म नहीं हुआ है....

(व्यथित हृदय : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उ.प्र.)

50000 रुपये वेतन देकर यदि एक अध्यापक से बाबू, मालवाहक, संदेशवाहक, सामग्री-वितरक, सर्वेक्षक जैसे काम करवाये जाते हैं, तो इसका मतलब है :-

1. सस्ते काम का महँगा भुगतान
2. बच्चों के शैक्षिक समय में कटौती
3. विद्यार्थी-अध्यापक bond में कमज़ोरी
4. शिक्षक की शैक्षणिक एकाग्रता से खिलवाड़
5. अध्यापक पद का अवमूल्यन
6. अध्यापन-प्रशिक्षण का उपहास
7. और अंततः, शिक्षा की गुणवत्ता से समझौता

(प्रशान्त अग्रवाल, बरेली)

MDM : नाम एक, काम अनेक

(इस आशा से प्रेषित कि शायद यह दर्द नीति-निर्धारकों तक पहुंच जाये)

(शिक्षक द्वारा किये जाने वाले कार्य)

- खाना खाने के इच्छुक बच्चों के हाथ उठवाकर उन्हें गिनना।
- संख्यानुसार सामग्री की गणना करके उसे नाप-तोल कर रसोइया को देना।
- भोजन बनने की सूचना आने पर सभी बच्चों को अनुशासित करके थाली-वितरण
- थाली साफ़ करने हेतु बच्चों को सर्फ-वितरण
- भोजन चखना
- बच्चों को कायदे से बैठाकर भोजन-व्यवस्था की सतत निगरानी
- भोजनोपरांत पुनः सर्फ-वितरण
- नल पर थाली-सफाई के दौरान अनुशासन की निगरानी
- थाली जमा करके यथास्थान रखना/रखवाना
- भोजन-स्थल की सफाई-व्यवस्था करवाना
- इसके अतिरिक्त दूध-वितरण वाले दिन उक्त सभी कार्य 'डबल'
- कोटेदार से राशन की बोरी ढोकर लाना
- समय-समय पर मसाले-सब्जी आदि खरीद-खरीदकर विद्यालय तक ढोना और उन्हें डिब्बों में भरना
- ईंधन की व्यवस्था करना
- सोमवार को फल, बुधवार को दूध की व्यवस्था करना
- प्रतिदिन अंत में रसोइया के हस्ताक्षर रजिस्टर में करवाना
- रसोइया- चयन, उनके मानदेय-वितरण की कार्यवाही
- ....(शायद ध्यान न आ रहा हो)

इन सारे कार्यों की चार बड़ी हानियाँ :

1. शैक्षिक समय नष्ट होना
2. शिक्षा-प्रक्रिया का, उसकी लय का बाधित होना
3. शिक्षकों की काफी ऊर्जा का mdm की भेंट चढ़ना
4. शिक्षकों की योग्यता/क्षमता का गलत दिशा में सतही उपयोग

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

Quantity से अधिक ज़रूरी Quality

जिस प्रकार चार अधपकी रोटियों की बजाय दो भली-भाँति पकी रोटी बेहतर हैं, उसी प्रकार प्रत्येक गाँव में आधे-अधूरे ढांचे वाले परिषदीय विद्यालय खोलने से बेहतर होगा कि दो-तीन गाँवों के बीच एक ही विद्यालय (जो सर्वांग सुविधाओं वाला हो) खोला जाये ताकि बच्चों को बेहतर गुणवत्ता वाली शिक्षा मिल सके, भले ही विद्यार्थी को 2 किलोमीटर की दूरी तय करनी पड़े।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उ.प्र.)

भाषा थोपकर विचारों और आत्मविश्वास की हत्या

(एक पीड़ा की अभिव्यक्ति)

एक शिशु जो कोई भाषा नहीं बोल पाता, क्या उसकी माँ उसके इशारों की भाषा की उपेक्षा करके उसे दूध पिलाने से मना कर देगी?

जिस देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर गद्दारों को भी बोलने की आज़ादी है, उसी देश में convent में पढ़ने वाले छोटे-छोटे बच्चों को अपनी भाषा में बोलने पर दण्डित होना पड़ता है।

एक प्रद्युम्न की हत्या पर पूरे देश में उबाल आ जाता है, लेकिन उन लाखों-करोड़ों प्रद्युम्नों के विचारों और आत्मविश्वास की हत्या तो रोज हो रही है जो अपना विचार इसलिए नहीं रख पाते क्योंकि उन्हें अंग्रेजी नहीं आती।

और यदि ये बच्चे अंग्रेजी में पारंगत हो भी जाएँ तो भी आपने उनके अन्दर हिंदी के प्रति उपेक्षा और हेयता के संस्कार तो डाल ही दिए गये। अब यही बच्चे बड़े होकर हिन्दीभाषी उन लोगों को दोयम दृष्टि से देखेंगे जिन्हें अंग्रेजी नहीं आती।

विश्व मानचित्र ऐसे दृष्टान्तों से भरा पड़ा है जहाँ निजभाषा से प्रेम राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय उन्नति का पर्याय होता है, लेकिन हम ऐसे भाषाद्रोही बनने पर उतारू हैं जो प्रतीकात्मक राजनीतिक आज़ादी के धोखे में मानसिक गुलामी की नित-नयी इबारत लिखने पर आमादा हैं।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

पंख न बांधो मेरे : मातृभाषा मेरा 'स्व'

यह दुःखद विडंबना ही है कि हिंदुस्तान की प्राण भाषा हिंदी के समर्थन में तर्क देने पड़ रहे हैं।

सर्वप्रथम तो यह स्पष्ट होना चाहिए कि 'अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा' और 'अंग्रेज़ी माध्यम में शिक्षा' दो भिन्न बातें हैं। विरोध अंग्रेज़ी भाषा का नहीं है, अंग्रेज़ी माध्यम का है।

"मातृभाषा ही शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है", इस बात को अनेकानेक विद्वान कह-कहकर थक गये, कितने ही आयोगों की ऐसी संस्तुतियां धूल चाट रही हैं, मनोवैज्ञानिक पक्षों की धज्जियाँ उड़ा दी गयीं, संसार के प्रमुखतम देशों के मातृभाषा-प्रेम को भी अनदेखा कर दिया गया; क्यों? क्योंकि 200 साल की औपनिवेशिक दासता अपने नये मॉडर्न कलेवर में हम पर पहले से भी ज़्यादा हावी है।

अरे, कितनी सीधी सी बात है, अगर मुझे 4 किलो वजन (ज्ञान) उठाना हो तो मैं 10 किलो की भारी परात (भाषा) का इस्तेमाल करूँगा या 1 किलो वाली हल्की परात से काम चलाऊँगा?

मुख्य चीज़ है ज्ञान और मौलिक चिंतन, और मेरे खून में बसी मातृभाषा ज्ञान और मौलिकता के समंदर में उतरने के लिए सर्वोत्तम नौका है, मेरी आसमानी उड़ान के लिए सर्वोत्तम पंख है,

हे राष्ट्राधीशों, हे नीतिनियन्ताओं, माँ के हर स्वरूप को पूजने वाले देश में भाषा-माँ की इतनी अवमानना क्यों? एक शिशु को उसकी माँ से जुदा करने का पाप क्यों?

"अंग्रेज़ी आज की ज़रूरत है", "यह वैश्विक भाषा है", "इस भाषा में ज्ञान का समृद्ध भंडार है"; ऐसा कहने वालों से एक प्रश्न है, "English इस मुकाम तक कैसे पहुँची?" क्योंकि उसके बोलने वालों ने अपने 'स्व' को नहीं छोड़ा। अपनी 'स्व-भाषा' पर टिके रहने के कारण वे ज्ञान को सहजता से ले पाये, मौलिक चिंतन कर पाये, संस्कृति की जड़ों से जुड़े रहे, ज्ञानात्मक के अलावा भावनात्मक रूप से भी शक्तिशाली बन गये और दुनिया पर राज कर गये। यदि उनकी किसी बात का अनुकरण करना ही है तो 'स्व' के प्रति उनकी इस निष्ठा से प्रेम करो। और जब सांस्कृतिक, वैज्ञानिक आदि अनेक दृष्टियों से हमारा 'स्व' उनसे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ है, तब तो 'स्व' की ऐसी उपेक्षा घोर दुर्बुद्धि की परिचायिका है।

डिब्बे का पैक्ड ब्रांडेड दूध विज्ञापन बन सकता है, माँ के दूध का विकल्प नहीं।

शानदार चिकने फर्शों के टाइल से स्टाइल आ सकता है, मिट्टी की उर्वरा-शक्ति नहीं।

ज्ञान के भूखे बच्चे को विजातीय तत्त्व की इतनी घुट्टी मत पिलाइये।

मौलिकता के उन्मुक्त आकाश में उड़ने वालों पर भाषा का बोझ मत लादिये।

उनकी कल्पना और अभिव्यक्ति को भाषाई अवरोधक लगाकर झटके मत दीजिए।

ऊपरी सजावट के आडंबर में आत्मिक शक्ति को दांव पर मत लगाइये।

मेरी भाषा मेरी उड़ान

मुझे पुकारे आसमान

(विचार-अभिव्यक्ति : प्रशान्त अग्रवाल, प्राथमिक विद्यालय डहिया, बरेली, उ.प्र.)

गलत सीख !

प्रायः हम सभी ने 'Johny Johny yes papa' rhyme पढ़ी और पढ़ाई होगी। छोटे बच्चों की इस rhyme का सार यही है कि "बच्चा झूठ बोल रहा है, और झूठ पकड़े जाने पर हँस रहा है।"

बालमन को यही तो संदेश गया कि छोटी-मोटी चोरी और झूठ में कोई बड़ी बुराई नहीं है? पर याद रहे, विशाल वृक्ष का बीज भी कभी छोटा ही होता है।

विडंबना यह कि इस rhyme को पाठ्यक्रम में शामिल करने पर उन महाविद्वानों ने मुहर लगायी होगी जो बाल-मनोविज्ञान के महारथी रहे होंगे। क्या सूक्ष्म कुसंस्कार से युक्त इस rhyme का कोई स्वस्थ विकल्प ये महाविद्वान नहीं खोज पाये?

बात कितनी महत्त्वपूर्ण है, सुधी विद्वान स्वयं विचार करें...।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उ.प्र.)

यदि कोई व्यक्ति ऐसे प्रश्नों का सही उत्तर दे देता है, जिनसे उसको या समाज को कोई सार्थक लाभ नहीं है तो ऐसे ज्ञानार्जन को प्रशंसनीय माना जाये या समय की बर्बादी?

(प्रशान्त, 29.8.2019)

पदस्थों के नाम रटाना कितना सही?

छोटे बच्चों को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री आदि के नाम रटा देना क्या शैक्षिक दृष्टिकोण से कोई उपलब्धि कही जा सकती है?

वह भी तब, जब

1. इन पदों की महत्ता, उनकी चयन-प्रणाली, उनके व्यापक परिप्रेक्ष्य से वह बच्चा प्रायः अनभिज्ञ हो।

   और,

2. इन पदों पर पदस्थ व्यक्ति नितांत परिवर्तनशील हों।

जो बच्चे इन पदों पर बैठे लोगों के नाम भूल जाते हैं या याद नहीं रखते, क्या वे बच्चे और उनके शिक्षक शर्मिंदा किये जाने योग्य हैं?

निरीक्षणों में या पत्रकारिता में यह बिंदु इतनी प्रमुखता से उठाया जाता है, मानों इनका ज्ञान न होने पर शेष ज्ञान निस्सार है।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्राथमिक विद्यालय डहिया, बरेली, उ.प्र.)

आसन की गरिमा

(एक निवेदन)

बैठने का आसन, चाहे वह कुर्सी हो या बच्चों की पट्टी, उसकी अपनी एक गरिमा होती है। यहाँ तक कि उसे पैर से खींचना, सरकाना भी गलत मानते हैं।

प्रसंगतः अनेक शिक्षक-शिक्षिकाएं बच्चों की पट्टी पर पैर रखकर चलते-निकलते समय उक्त तथ्य पर ध्यान नहीं देते और अनजाने ही कुसंस्कार का एक बीज बच्चों में बो देते हैं। कृपया इससे बचें।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

'अधीनस्थ की कुर्सी पर बैठना कितना सही?'

अक्सर देखा जाता है कि जब कोई अधिकारी निरीक्षण करने जाता है तो वह उस संस्थान के मुखिया की कुर्सी पर साधिकार बैठता है।

लेकिन मेरी दृष्टि से ऐसा करना सही नहीं है क्योंकि :

- वह कुर्सी उस पद-विशेष की है, न तो उससे नीचे के पद की, न उससे ऊँचे पद की।
- अपने से निचले पद की कुर्सी पर बैठकर निरीक्षक अधिकारी स्वयं का भी अवमूल्यन प्रदर्शित करता है।
- ऐसा करना उसके अहंकार को भी दर्शाता है।
- ऐसा करके वह, प्रकारांतर से, उस संस्थान-प्रमुख की गरिमा को ठेस पहुँचाता है, जैसे किसी का घर कब्ज़ाकर उसे बेघर करना।

(विचारक: प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उ.प्र.)

एक गणित यह भी

(समय-अनुशासन का पालन करने वाले सभी साथियों को नमन करते हुए अपने परिवेश की एक कड़वी सच्चाई की तकलीफदेह अभिव्यक्ति) (सुधी साथी कृपया अन्यथा न लें)

जब 100 विद्यार्थियों वाले विद्यालय में हममें से कोई शिक्षक 15 मिनट देर से विद्यालय पहुंचता है तो नुकसान सिर्फ 15 मिनट का नहीं होता बल्कि विद्यार्थियों के 100×15=1500 मिनट अर्थात 25 घंटे बर्बाद हो चुके होते हैं।

जो शिक्षक 10-15 मिनट देर से पहुँचने को सामान्य बात समझते हैं, क्या वे विद्यालय समय की समाप्ति के 10-15 मिनट बाद भी 'सामान्यतः' रुक जाते हैं?

यदि विद्यालय समय समाप्ति के एक मिनट आगे रुकने पर हम खुद को ठगा हुआ या शोषित महसूस करते हैं, तो विद्यार्थियों के अनगिनत मिनट्स और घंटों को ठगना, उन्हें शोषित करना न्यायोचित कैसे ठहरा सकते हैं?

हम जब पारिवारिक कार्यों आदि की आड़ में देर से विद्यालय पहुँचने या समय से पहले विद्यालय छोड़ने को अपनी "नियमित आदत" बना लेते हैं तो भूल जाते हैं कि परिवार की मजबूती की बुनियाद में वही बच्चे हैं जिनके कारण हमें वेतन मिल रहा है और जो नादान होने के कारण अपने साथ हो रहे अन्याय का प्रतिकार तो दूर, उसे समझ भी नहीं पा रहे हैं।

ईश्वरीय न्याय / प्राकृतिक न्याय क्या अंततः सब समीकरण बराबर नहीं कर देगा?

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उत्तर प्रदेश)

नौकरी : करने के लिए या बचाने के लिए?

(सभी कर्मठ शिक्षक साथियों का तहेदिल से सम्मान करते हुए मुझे अपने उन साथियों से कुछ निवेदन करना है जिनकी सोच है कि नौकरी करनी नहीं है, बचानी है)

स्वामी विवेकानंद ने अपनी पुस्तक राजयोग में एक वैज्ञानिक दृष्टान्त के माध्यम से बहुत गहरी बात कही है, "यदि आप पत्थर के एक टुकड़े को फेंकें और उस टुकड़े पर कोई भी बल जैसे गुरुत्वाकर्षण बल, वायुमंडलीय दबाव, घर्षण आदि कार्य न करें तो एक दिन (चाहें 10 मिनट लगें चाहें 10 लाख साल लगें) वह टुकड़ा आपके हाथ में ठीक उसी बिंदु पर आ जायेगा क्योंकि इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु, विचार, भावना, कर्म की गति वृत्ताकार/दीर्घ वलयाकार है।"

आइन्स्टीन से पूछा गया कि आप सर्वोच्च नियामक सत्ता में विश्वास क्यों करते हैं? आइन्स्टीन ने कहा, "जब मैंने देखा कि एक अणु के nucleus के चारों ओर electron भी पूरी नियमबद्धता से चक्कर लगा रहे हैं, तो मैंने सोचा कि यह सम्पूर्ण सृष्टि बिना किसी नियम के, बिना किसी नियामक सत्ता के कैसे चल सकती है!"

सार यही "जो बोयेंगे वही काटेंगे", यही आस्तिकता है।

हमारे जीवन की अनेक घटनाओं का कारण हम नहीं समझ पाते और कहते हैं, "आखिर मुझे किस गुनाह की सजा मिल रही है", क्योंकि हम बहुत समय पहले फेंके गये उस पत्थर के टुकड़े के बारे में नहीं जानते।

उसे जानने की ज़रूरत भी नहीं है। ज़रूरत सिर्फ इस बात की है कि आगे से हम ध्यान रखें कि सही बीज ही बोना है, सही चीज़ ही प्रक्षेपित करनी है; किसी दूसरे को दिखाने के लिए नहीं, अपना कर्तव्य मानकर। इसी में स्वार्थ है, इसी में परमार्थ है।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उत्तर प्रदेश)

इच्छाएँ न्यूनतम, परहित अधिकतम

(हरदोई की शिक्षिका मंजू वर्मा जी की कविता की तीसरी पंक्ति से निकली विचार-तरंग)

'किससे सीखा उसने ज्ञान ?'

इसका मतलब विश्व की नियामक सत्ता ने प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार हुनर दिया है।

पशु-पक्षियों को survival का ज्ञान
मानव को सर्वोच्च ध्येय हेतु विवेक का वरदान

किन्तु पशु-पक्षियों की इच्छाएं सीमित हैं तो विवेक भी सीमित है। अतः उन्नति भी सीमित।

दूसरी ओर मानव को उन्नत विवेक का वरदान प्राप्त है पर इच्छाएं असीमित होने से मात खा जाता है और वह भी सीमित उन्नत रह जाता है।

यानी अगर निजी महत्त्वाकांक्षाओं को न्यूनतम रखकर परहित में पूर्णतः निरत हो जाएं (वर्तमान में बच्चों के प्रति कर्तव्य से बढ़कर करने से) तो सर्वोच्च प्राप्तव्य स्वतः प्राप्त हो जाएगा।

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्राथमिक विद्यालय डहिया, बरेली, उ.प्र., 1.6.2018)

सम्मान! कैसा सम्मान!!

आज से लगभग 7 वर्ष पूर्व गहन अध्ययन के दौर में 'अद्भुत' जैन संत श्रीमद राजचंद्र का एक वाक्य पढ़ा था,

"....उस तुच्छ पदार्थ (जिस व्यसन को तू चाहता है) की कीमत की अपेक्षा तेरी कीमत तुच्छ है!..."

इस गहरी बात ने विचारों की श्रृंखला को जन्म दे दिया और लगा कि वास्तव में पद, सम्मान की लालसा हमें उन चीजों से छोटा ही सिद्ध करती है।

आखिर, हमारे मन में उनके प्रति महत्त्व बुद्धि क्यों है?

क्या इन नेताओं, प्रशासकों, नौकरशाहों से मिले सम्मान वास्तव में हमारा गौरव बढ़ाने में सक्षम हैं? यदि मेरे कार्यों पर मुझे या शेष समाज को ऐसे लोगों की औपचारिक मुहर की दरकार है, तब तो यह मेरे आत्मसम्मान की अवमानना है। महत्त्व तो श्रेष्ठ कार्य के बाद मिली बधाई का है, वरना सम्मान-रूपी मंज़िल पर तो सभी खड़े मिलते हैं।

हमें असली सम्मान वही दे सकता है, जो हमारे कार्य की दिल से कद्र करता हो जैसे हमारे कार्य की महत्ता समझने वाले साथी और शुद्ध हृदय वाले बच्चे।

और एक बात, जब आंखों में दिल की नमी उतर आये तो समझ लीजिएगा कि 'उसके' ख़ज़ाने का असली मोती मिल गया है।

(यद्यपि ये मेरे विचार हैं, जिन पर कई बार मैं शायद खुद भी अमल नहीं कर पाता क्योंकि सम्मान मिलने पर मुझे आज भी कुछ तो खुशी होती ही है लेकिन हम चल पायें या नहीं, आदर्श को हमेशा अपने सम्मुख रखना चाहिए, स्खलन कम होगा और कभी तो....)

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उत्तर प्रदेश)

भगवान की खुशी

नेताओं, अफसरों के द्वारा मिले औपचारिक सम्मान दिमाग को बहुत भाते हैं।

कर्तव्यनिष्ठ साथियों से मिले सराहना के शब्द दिल को सुकून पहुँचाते हैं।

पर.....

कोमल भावों से भरे बच्चों के अनगढ़ (बिना मेकअप वाले) और अनपेक्षित compliments रूह में उतर जाते हैं।

क्योंकि अब तो भगवान् खुश हो गये न....

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उ.प्र.)

~~~● नयी शिक्षा नीति : भाषा पर एक विचार ●~~~

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र पर दक्षिण भारत में, विशेषकर तमिलनाडु में, हिंदी को लेकर विरोध हो रहा है। मेरे विचार में इसका समाधान इस प्रकार हो सकता है :

प्रथम भाषा : स्थानीय
द्वितीय भाषा : अंग्रेज़ी
तृतीय भाषा : संस्कृत

[संस्कृत को तीसरी भाषा बनाने के अनेकानेक लाभ और कारण]

● देश में कहीं विरोध नहीं होगा क्योंकि उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम की सभी भाषाएँ संस्कृत से ही निकली हैं। दक्षिण भारतीय भाषाओं में तो संस्कृत शब्दों की विशेष बहुतायत है।
● इसी बहाने हम अपनी संस्कृति, अपने (बल्कि संसार के) प्राचीनतम ज्ञान-शास्त्र के शुद्धतम रूप के निकट पहुँचेंगे।
● संस्कृत के अध्ययन से समाज में नैतिक मूल्यों और संस्कारों का विकास अधिक होगा, शोध से प्रमाणित हुआ है।
● संस्कृत के अल्प-प्रचलन का कुतर्क भी निस्सार है क्योंकि अंग्रेज़ी भी शुरुआत में अधिक प्रचलित नहीं थी, यह तो शासकीय इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है।
● संस्कृत सर्वोत्तम tongue-twister भी है।
● संस्कृत सिर्फ भूतकाल की ही नहीं, भविष्य की भी भाषा है, क्योंकि वैज्ञानिकों के अनुसार कंप्यूटर, अंतरिक्ष प्रणाली में भी यही सर्वाधिक सटीक है।

अतः भूतकाल की गौरव को भविष्य की गर्वानुभूति से जोड़ने में हम क्यों न वर्तमान की महत्त्वपूर्ण कड़ी बन जायें! हम लोगों के पास स्वर्णिम इतिहास रचने का सुअवसर है, इसे हाथ से न जाने दें।

[दूरगामी विचार]

भविष्य में त्रिभाषा सूत्र द्विभाषा बन जाये, स्थानीय और संस्कृत
क्योंकि....
जब ज़रा से लोगों द्वारा बोली जाने वाली, एक अवैज्ञानिक भाषा अँग्रेज़ी, सत्ता-शक्ति के दम पर विश्वव्यापी बन सकती है,
तो असीम शक्तिसम्पन्न, वैज्ञानिकता से परिपूर्ण और इतने विशाल देश की हृदयतरंगिणी देववाणी क्या अपनों से भी सम्मान की अधिकारी नहीं है?
आज हम और हमारे नीति-नियंता संस्कृत को सम्मान दें तो भविष्य में यह सारे विश्व में हमें सम्मान दिलाएगी क्योंकि...

"माता लेती कम, देती बहुत ज़्यादा है।"

(विचारक : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उ.प्र.)

Kahoot challenge : एक विश्लेषण

Kahoot challenge मैंने खेला,
जीता भी, बहुत मज़ा भी आया,
खेल के निर्माताओं की नीयत और मेहनत भी निःसंदेह प्रणम्य है;

किन्तु मन में कुछ प्रश्न उठे :

1. व्यक्तिगत खेल तो बहुत रुचिपूर्ण है किंतु क्या यह खेल बच्चों को कक्षा में सामूहिक रूप से खिला सकते हैं?

2. यदि प्रत्येक बच्चे को अलग-अलग बुलाकर खिलायें तो क्या ऐसे मुकाबले के लिए हमारे पास इतना समय है?

3. इसकी बजाय मौखिक प्रश्नोत्तरी की प्रतियोगिता क्या समय-बचत और सबके involvement की दृष्टि से अधिक उपयोगी विकल्प नहीं होगी?

4. जो कार्य बिना ICT के हो सकता है, क्या उसे करने के लिए ICT का प्रयोग करना चाहिए?

हो सकता है कि कुछ पक्षों को मैं न समझ पा रहा होऊँ और गलत होऊँ। किन्तु सुधी साथी कृपया विचार अवश्य करें।

हाँ, इस सबसे प्रश्न निर्माण की प्रेरणा अवश्य मिली, जिसके लिए kahoot challenge निर्माताओं का हृदय से आभारी हूँ।

(विश्लेषक : प्रशान्त अग्रवाल, प्रा. वि. डहिया, बरेली, उ.प्र.)

'सभ्य' समाज से मासूम सवाल

(1)
"मास्टर जी, लाउडस्पीकर के शोर से तो कान फटे जा रहे हैं।"
"बेटा, पड़ोस में धर्म का काम हो रहा है।"
"मास्टर जी, धर्म का उद्देश्य क्या है?"
"शान्ति।"

(2)
"मास्टर जी, बलिदान/कुर्बानी और हत्या में क्या फर्क़ है?"
"बेटा, बलिदान/कुर्बानी का अर्थ है 'परमार्थ के लिए स्वार्थ का त्याग' और हत्या का अर्थ है 'किसी बेगुनाह को मार देना'।"
"तो निरपराध पशुओं की हत्या को बलिदान/कुर्बानी क्यों कहते हैं?"

(3)
"मास्टर जी, सरकार शराब क्यों बेचती है?"
"बेटा, आमदनी के लिए।"
"और उस आमदनी को कहाँ खर्च करती है?"
"जनकल्याण में।"

(4)
"मास्टर जी, ये 10-12 अम्बेसडर कारें किसकी खड़ी हैं?"
"आज मंत्रीजी आये हैं, उनका भाषण है।"
"भाषण का विषय क्या है?"
"मितव्ययिता।"

(5)
"मास्टर जी, सारा ट्रैफिक रोककर ये नीली बत्ती वाली गाड़ी क्यों गुजारी जा रही है?"
"बेटा, यह बड़े अफसर की गाड़ी है।"
"तो उसके अंदर ये स्कूल बैग लिये बच्चा क्यों बैठा है?"

(6)
"मास्टर जी, भगवान किस बात से सबसे ज़्यादा खुश होते हैं?"
"ईमानदारी से।"
"तो लोग भगवान के दर्शनों के लिए लाइन के बीच में घुसकर बेईमानी क्यों करते हैं?"

(7)
"मास्टर जी, आतंकवादी बेकसूर लोगों को क्यों मारते हैं?"
"वे दहशत फैलाकर वहाँ अपनी हुकूमत लाना चाहते हैं।"
"वे अपनी हूकुमत क्यों चाहते हैं?"
"क्योंकि उन्हें लगता है कि उनकी हुकूमत में बेकसूरों पर ज़ुल्म नहीं होगा।"

(8)
"मास्टर जी, पुलिस क्या करती है?"
"बेटा, पुलिस लोगों की रक्षा करती है।"
"तो आमतौर पर लोग अपने रक्षकों से इतना डरते क्यों हैं?"

(9)
"मास्टर जी, हमें पढ़ना क्यों चाहिए?"
"ताकि हम अच्छे-बुरे का फ़र्क़ सीखकर अच्छे इंसान बनें।"
"तो शिक्षा बढ़ने के बावजूद लोग यह क्यों कहते हैं, 'बड़ा खराब जमाना आ गया है'..?"

(10)
"मास्टर जी, कल तक तो यह मुन्नू कपड़े की दूकान में नौकरी करता था, आज भीख क्यों माँग रहा है?"
"बेटा, कल इसके मालिक को बालश्रम कराने के अपराध में जेल हो गयी और मुन्नू को 'मुक्त' करा लिया गया।"

(लघु-संवाद-रचनाकार : प्रशान्त अग्रवाल, बरेली, उ.प्र.)

शिक्षा का अधिकार
सर्व शिक्षा अभियान
सब पढ़ें सब बढ़ें
KALRAV
1
FOR FREE DISTRIBUTION
2020-2021
शिक्षा का अधिकार
सर्व शिक्षा अभियान
सब पढ़ें सब बढ़ें
RAINBOW
3
For Free Distribution
2020-2021
यदि Rainbow 'रोमन' लिपि में है
तो Kalrav 'देवनागरी में क्यों नहीं ??